श्री राम-वाल्मीकि संवाद

चौपाई :

*** अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखनु सिय रामु बटाऊ॥ राम धाम पथ पाइहि सोई। जो पथ पाव कबहु मुनि कोई॥1॥

भावार्थ:

आज भी जिसके हृदय में स्वप्न में भी कभी लक्ष्मण, सीता, राम तीनों बटोही आ बसें, तो वह भी श्री रामजी के परमधाम के उस मार्ग को पा जाएगा, जिस मार्ग को कभी कोई बिरले ही मुनि पाते हैं॥1॥

*** तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी॥ तहँ बसि कंद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई॥2॥

भावार्थ:

तब श्री रामचन्द्रजी सीताजी को थकी हुई जानकर और समीप ही एक बड़ का वृक्ष और ठंडा पानी देखकर उस दिन वहीं ठहर गए। कन्द, मूल, फल खाकर (रात भर वहाँ रहकर) प्रातःकाल स्नान करके श्री रघुनाथजी आगे चले॥2॥

*** देखत बन सर सैल सुहाए। बालमीकि आश्रम प्रभु आए॥ राम दीख मुनि बासु सुहावन। सुंदर गिरि काननु जलु पावन॥3॥

भावार्थ:

सुंदर वन, तालाब और पर्वत देखते हुए प्रभु श्री रामचन्द्रजी वाल्मीकिजी के आश्रम में आए। श्री रामचन्द्रजी ने देखा कि मुनि का निवास स्थान बहुत सुंदर है जहाँ सुंदर पर्वत, वन और पवित्र जल है॥3॥

*** सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुंजत मंजु मधुप रस भूले॥ खग मृग बिपुल कोलाहल करहीं। बिरहित बैर मुदित मन चरहीं॥4॥

भावार्थ:

सरोवरों में कमल और वनों में वृक्ष फूल रहे हैं और मकरन्द रस में मस्त हुए भौंरे सुंदर गुंजार कर रहे हैं। बहुत से पक्षी और पशु कोलाहल कर रहे हैं और वैर से रहित होकर प्रसन्न मन से विचर रहे हैं॥4॥

दोहा :

*** सुचि सुंदर आश्रमु निरखि हरषे राजिवनेन। सुनि रघुबर आगमनु मुनि आगें आयउ लेन॥124॥

भावार्थ:

पवित्र और सुंदर आश्रम को देखकर कमल नयन श्री रामचन्द्रजी हर्षित हुए। रघुश्रेष्ठ श्री रामजी

का आगमन सुनकर मुनि वाल्मीकिजी उन्हें लेने के लिए आगेआए॥124॥

चौपाई :

*** मुनि कहुँ राम दंडवत कीन्हा। आसिरबादु बिप्रबर दीन्हा॥ देखि राम छबि नयन जुड़ाने। करि सनमानु आश्रमहिं आने॥1॥

भावार्थ:

श्री रामचन्द्रजी ने मुनि को दण्डवत किया। विप्र श्रेष्ठ मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया। श्री रामचन्द्रजी की छबि देखकर मुनि के नेत्र शीतल हो गए। सम्मानपूर्वक मुनि उन्हें आश्रम में ले आए॥1॥

*** मुनिबर अतिथि प्रानप्रिय पाए। कंद मूल फल मधुर मँगाए॥ सिय सौमित्रि राम फल खाए। तब मुनि आश्रम दिए सुहाए॥2॥

भावार्थ:

श्रेष्ठ मुनि वाल्मीकिजी ने प्राणप्रिय अतिथियों को पाकर उनके लिए मधुर कंद, मूल और फल मँगवाए। श्री सीताजी, लक्ष्मणजी और रामचन्द्रजी ने फलों को खाया। तब मुनि ने उनको (विश्राम करने के लिए) सुंदर स्थान बतला दिए॥2॥

*** बालमीकि मन आनँदु भारी। मंगल मूरति नयन निहारी॥ तब कर कमल जोरि रघुराई। बोले बचन श्रवन सुखदाई॥3॥

भावार्थ:

(मुनिश्री रामजी के पास बैठे हैं और उनकी) मंगल मूर्ति को नेत्रों से देखकर वाल्मीकिजी के मन में बड़ा भारी आनंद हो रहा है। तब श्री रघुनाथजी कमलसदृशहाथों को जोड़कर, कानों को सुख देने वाले मधुर वचन बोले-॥3॥

*** तुम्ह त्रिकाल दरसी मुनिनाथा। बिस्व बदर जिमि तुम्हरें हाथा ॥ अस कहि प्रभु सब कथा बखानी। जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी॥4॥

भावार्थ:

हे मुनिनाथ! आप त्रिकालदर्शी हैं। सम्पूर्ण विश्व आपके लिए हथेली पर रखे हुए बेर के समान है। प्रभु श्री रामचन्द्रजी ने ऐसा कहकर फिर जिस-जिस प्रकार से रानी कैकेयी ने वनवास दिया, वह सब कथा विस्तार से सुनाई॥4॥

दोहा :

*** तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु सबु मम पुन्य प्रभाउ॥125॥

भावार्थ:

(और कहा-) हे प्रभो! पिता की आज्ञा (का पालन), माता का हित और भरत जैसे (स्नेही एवं धर्मात्मा) भाई का राजा होना और फिर मुझे आपके दर्शन होना, यह सब मेरे पुण्यों का प्रभाव

है॥125॥

चौपाई :

*** देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे॥॥ अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदबेगु न पावै कोई॥1॥

भावार्थ:

हे मुनिराज! आपके चरणों का दर्शन करने से आज हमारे सब पुण्य सफल हो गए (हमें सारे पुण्यों का फल मिल गया)। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ कोई भी मुनि उद्वेग को प्राप्त न हो-॥1॥

*** मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं। ते नरेस बिनु पावक दहहीं॥ मंगल मूल बिप्र परितोषू। दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू॥2॥

भावार्थ:

क्योंकि जिनसे मुनि और तपस्वी दुःख पाते हैं, वे राजा बिना अग्नि के ही (अपने दुष्ट कर्मों से ही) जलकर भस्म हो जाते हैं। ब्राह्मणों का संतोष सब मंगलों की जड़ है और भूदेव ब्राह्मणों का क्रोध करोड़ों कुलों को भस्म कर देता है॥2॥

*** अस जियँ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ॥ तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बासु करौं कछु काल कृपाला॥3॥

भावार्थ:

ऐसा हृदय में समझकर- वह स्थान बतलाइए जहाँ मैं लक्ष्मण और सीता सहित जाऊँ और वहाँ सुंदर पत्तों और घास की कुटी बनाकर, हे दयालु! कुछ समय निवास करूँ॥3॥

*** सहज सरल सुनि रघुबर बानी। साधु साधु बोले मुनि ग्यानी॥ कस न कहहु अस रघुकुलकेतू। तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू॥4॥

भावार्थ:

श्री रामजी की सहज ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि वाल्मीकि बोले- धन्य! धन्य! हे रघुकुल के ध्वजास्वरूप! आप ऐसा क्यों न कहेंगे? आप सदैव वेद की मर्यादा का पालन (रक्षण) करते हैं॥4॥

छन्द :

*** श्रुति सेतु पालक रामतुम्ह जगदीस माया जानकी। जो सृजति जगु पालति हरति रुख पाइ कृपानिधान की॥ जो सहससीसु अहीसु महिधरु लखनु सचराचर धनी। सुर काज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी॥

भावार्थ:

हे राम! आप वेद की मर्यादा के रक्षक जगदीश्वर हैं और जानकीजी (आपकी स्वरूप भूता) माया हैं, जो कृपा के भंडार आपका रुख पाकर जगत का सृजन, पालन और संहार करती हैं। जो हजार मस्तक वाले सर्पों के स्वामी और पृथ्वी को अपने सिर पर धारण करने वाले हैं, वही चराचर के

स्वामी शेषजी लक्ष्मण हैं। देवताओं के कार्य के लिए आप राजा का शरीर धारण करके दुष्ट राक्षसों की सेना का नाश करने के लिए चले हैं।

सोरठा :

*** राम सरूप तुम्हार बचन अगोचर बुद्धिपर। अबिगत अकथ अपार नेति नेति नित निगम कह।126॥

भावार्थ:

हे राम! आपका स्वरूप वाणी के अगोचर, बुद्धि से परे, अव्यक्त, अकथनीय और अपार है। वेद निरंतर उसका 'नेति-नेति' कहकर वर्णन करते हैं॥126॥

चौपाई :

*** जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥ तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥1॥

भावार्थ:

हे राम! जगत दृश्य है, आप उसके देखने वाले हैं। आप ब्रह्मा, विष्णु और शंकर को भी नचाने वाले हैं। जब वे भी आपके मर्म को नहीं जानते, तब और कौन आपको जानने वाला है?॥1॥

*** सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥ तुम्हरिहि कृपाँ तुम्हहि रघुनंदन। जानहिं भगत भगत उर चंदन॥2॥

भावार्थ:

वही आपको जानता है, जिसे आप जना देते हैं और जानते ही वह आपका ही स्वरूप बन जाता है। हे रघुनंदन! हे भक्तों के हृदय को शीतल करने वाले चंदन! आपकी ही कृपा से भक्त आपको जान पाते हैं॥2॥

*** चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥ नर तनु धरेहु संत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा।3॥

भावार्थ:

आपकी देह चिदानन्दमय है (यह प्रकृतिजन्य पंच महाभूतों की बनी हुई कर्मबंधनयुक्त, त्रिदेह विशिष्ट मायिक नहीं है) और (उत्पत्ति-नाश, वृद्धि-क्षय आदि) सब विकारों से रहित है, इस रहस्य को अधिकारी पुरुष ही जानते हैं। आपने देवता और संतों के कार्य के लिए (दिव्य) नर शरीर धारण किया है और प्राकृत (प्रकृति के तत्वों से निर्मित देह वाले, साधारण) राजाओं की तरह से कहते और करते हैं॥3॥

*** राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड़ मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥ तुम्ह जो कहहु करहु सबु साँचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥4॥

भावार्थ:

हे राम! आपके चरित्रों को देख और सुनकर मूर्ख लोग तो मोह को प्राप्त होते हैं और ज्ञानीजन

सुखी होते हैं। आप जो कुछ कहते, करते हैं, वह सब सत्य (उचित) ही है, क्योंकि जैसा स्वाँग भरे वैसा ही नाचना भी तो चाहिए (इस समय आप मनुष्य रूप में हैं, अतः मनुष्योचित व्यवहार करना ठीक ही है।)॥4॥

दोहा :

*** पूँछेहु मोहि कि रहौं कहँ मैं पूँछत सकुचाउँ। जहँ न होहु तहँ देहु कहि तुम्हहि देखावौं ठाउँ॥127॥

भावार्थ:

आपने मुझसे पूछा कि मैं कहाँ रहूँ? परन्तु मैं यह पूछते सकुचाता हूँ कि जहाँ आप न हों, वह स्थान बता दीजिए। तब मैं आपके रहने के लिए स्थान दिखाऊँ॥127॥

चौपाई :

*** सुनि मुनि बचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने॥ बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥1॥

भावार्थ:

मुनि के प्रेमरस से सने हुए वचन सुनकर श्री रामचन्द्रजी रहस्य खुल जाने के डरसे सकुचाकर मन में मुस्कुराए। वाल्मीकिजी हँसकर फिर अमृत रस में डुबोई हुई मीठी वाणी बोले-॥1॥

*** सुनहु राम अब कहुँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥ जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥2॥

भावार्थ:

हे रामजी! सुनिए, अब मैं वे स्थान बताता हूँ, जहाँ आप, सीताजी और लक्ष्मणजी समेत निवास कीजिए। जिनके कान समुद्र की भाँति आपकी सुंदर कथा रूपी अनेक सुंदर नदियों से-॥2॥

*** भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्ह के हिय तुम्ह कहुँ गुह रूरे॥ लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे॥3॥

भावार्थ:

निरंतर भरते रहते हैं, परन्तु कभी पूरे (तृप्त) नहीं होते, उनके हृदय आपके लिए सुंदर घर हैं और जिन्होंने अपने नेत्रों को चातक बना रखा है, जो आपके दर्शन रूपी मेघ के लिए सदा लालायित रहते हैं,॥3॥

*** निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी॥ तिन्ह कें हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक॥4॥

भावार्थ:

तथा जो भारी-भारी नदियों, समुद्रों और झीलों का निरादर करते हैं और आपके सौंदर्य (रूपी मेघ) की एक बूँद जल से सुखी हो जाते हैं (अर्थात आपके दिव्य सच्चिदानन्दमय स्वरूप के किसी एक अंग की जरा सी भी झाँकी के सामने स्थूल, सूक्ष्म और कारण तीनों जगत के अर्थात पृथ्वी, स्वर्ग

और ब्रह्मलोक तक के सौंदर्य का तिरस्कार करते हैं), हे रघुनाथजी! उन लोगों के हृदय रूपी सुखदायी भवनों में आप भाई लक्ष्मणजी और सीताजी सहित निवास कीजिए॥4॥

दोहा :

*** जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु। मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हियँ तासु॥128॥

भावार्थ:

आपके यश रूपी निर्मल मानसरोवर में जिसकी जीभ हंसिनी बनी हुई आपके गुण समूह रूपी मोतियों को चुगती रहती है, हे रामजी! आप उसके हृदय में बसिए॥128॥

चौपाई :

*** प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥ तुम्हहि निबेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं॥1॥

भावार्थ:

जिसकी नासिका प्रभु (आप) के पवित्र और सुगंधित (पुष्पादि) सुंदर प्रसाद को नित्य आदर के साथ ग्रहण करती (सूँघती) है और जो आपको अर्पण करके भोजन करते हैं और आपके प्रसाद रूप ही वस्त्राभूषण धारण करते हैं,॥1॥

*** सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी॥ कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदयँ नहिं दूजा॥2॥

भावार्थ:

जिनके मस्तक देवता, गुरु और ब्राह्मणों को देखकर बड़ी नम्रता के साथ प्रेम सहित झुक जाते हैं, जिनके हाथ नित्य श्री रामचन्द्रजी (आप) के चरणों की पूजा करते हैं और जिनके हृदय में श्री रामचन्द्रजी (आप) का ही भरोसा है, दूसरा नहीं,॥2॥

*** चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥ मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा॥3॥

भावार्थ:

तथा जिनके चरण श्री रामचन्द्रजी (आप) के तीर्थों में चलकर जाते हैं, हे रामजी! आप उनके मन में निवास कीजिए। जो नित्य आपके (राम नाम रूप) मंत्रराज को जपते हैं और परिवार (परिकर) सहित आपकी पूजा करते हैं॥3॥

*** तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना॥ तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी॥4॥

भावार्थ:

जो अनेक प्रकार से तर्पण और हवन करते हैं तथा ब्राह्मणों को भोजन कराकर बहुत दान देते हैं तथा जो गुरु को हृदय में आपसे भी अधिक (बड़ा) जानकर सर्वभाव से सम्मान करके उनकी सेवा

करते हैं,॥4॥

दोहा :

*** सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ। तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ॥129॥

भावार्थ:

और ये सब कर्म करके सबका एक मात्र यही फल माँगते हैं कि श्री रामचन्द्रजी के चरणों में हमारी प्रीति हो, उन लोगों के मन रूपी मंदिरों में सीताजी और रघुकुल को आनंदित करने वाले आप दोनों बसिए॥129॥

चौपाई :

*** काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा॥ जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया॥1॥

भावार्थ:

जिनके न तो काम, क्रोध, मद, अभिमान और मोह हैं, न लोभ है, न क्षोभ है, न राग है, न द्वेष है और न कपट, दम्भ और माया ही है- हे रघुराज! आप उनके हृदय में निवास कीजिए॥1॥

*** सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी॥ कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी॥2॥

भावार्थ:

जो सबके प्रिय और सबका हित करने वाले हैं, जिन्हें दुःख और सुख तथा प्रशंसा (बड़ाई) और गाली (निंदा) समान है, जो विचारकर सत्य और प्रिय वचन बोलते हैं तथा जो जागते-सोते आपकी ही शरण हैं,॥2॥

*** तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं॥ जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी॥3॥

भावार्थ:

और आपको छोड़कर जिनके दूसरे कोई गति (आश्रय) नहीं है, हे रामजी! आप उनके मन में बसिए। जो पराई स्त्री को जन्म देने वाली माता के समान जानते हैं और पराया धन जिन्हें विष से भी भारी विष है,॥3॥

*** जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी॥ जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥4॥

भावार्थ:

जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर हर्षित होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर विशेष रूप से दुःखी होते हैं और हे रामजी! जिन्हें आप प्राणों के समान प्यारे हैं, उनके मन आपके रहने योग्य शुभ भवन हैं॥4॥

दोहा :

*** स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात। मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात॥130॥

भावार्थ:

हे तात! जिनके स्वामी, सखा, पिता, माता और गुरु सब कुछ आप ही हैं, उनके मन रूपी मंदिर में सीता सहित आप दोनों भाई निवास कीजिए॥130॥

चौपाई :

*** अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं॥ नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका॥1॥

भावार्थ:

जो अवगुणों को छोड़कर सबके गुणों को ग्रहण करते हैं, ब्राह्मण और गो के लिए संकट सहते हैं, नीति-निपुणता में जिनकी जगत में मर्यादा है, उनका सुंदर मन आपका घर है॥1॥

*** गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥ राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥2॥

भावार्थ:

जो गुणों को आपका और दोषों को अपना समझता है, जिसे सब प्रकार से आपका ही भरोसा है और राम भक्त जिसे प्यारे लगते हैं, उसके हृदय में आप सीता सहित निवास कीजिए॥2॥

*** जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई॥ सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई॥3॥

भावार्थ:

जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई, प्यारा परिवार और सुख देने वाला घर, सबको छोड़कर जो केवल आपको ही हृदय में धारण किए रहता है, हे रघुनाथजी! आप उसके हृदय में रहिए॥3॥

*** सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥ करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा॥4॥

भावार्थ:

स्वर्ग, नरक और मोक्ष जिसकी दृष्टि में समान हैं, क्योंकि वह जहाँ-तहाँ (सब जगह) केवल धनुष-बाण धारण किए आपको ही देखता है और जो कर्म से, वचन से और मन से आपका दास है, हे रामजी! आप उसके हृदय में डेरा कीजिए॥4॥

दोहा :

*** जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु। बसहु निरंतर तासु मन सो राउर निज गेहु॥131॥

भावार्थ:

जिसको कभी कुछ भी नहीं चाहिए और जिसका आपसे स्वाभाविक प्रेम है, आप उसके मन में निरंतर निवास कीजिए, वह आपका अपना घर है॥131॥

चौपाई :

*** एहि बिधि मुनिबर भवन देखाए। बचन सप्रेम राम मन भाए॥ कह मुनि सुनहु भानुकुलनायक। आश्रम कहउँ समय सुखदायक॥1॥

भावार्थ:

इस प्रकार मुनि श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने श्री रामचन्द्रजी को घर दिखाए। उनके प्रेमपूर्ण वचन श्री रामजी के मन को अच्छे लगे। फिर मुनि ने कहा- हे सूर्यकुल के स्वामी! सुनिए, अब मैं इस समय के लिए सुखदायक आश्रम कहता हूँ (निवास स्थान बतलाता हूँ)॥1॥

*** चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥ सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥2॥

भावार्थ:

आप चित्रकूट पर्वत पर निवास कीजिए, वहाँ आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है और सुंदर वन है। वह हाथी, सिंह, हिरन और पक्षियों का विहार स्थल है॥2॥

*** नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रिप्रिया निज तप बल आनी॥ सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥3॥

भावार्थ:

वहाँ पवित्र नदी है, जिसकी पुराणों ने प्रशंसा की है और जिसको अत्रि ऋषि की पत्नी अनसुयाजी अपने तपोबल से लाई थीं। वह गंगाजी की धारा है, उसका मंदाकिनी नाम है। वह सब पाप रूपी बालकों को खा डालने के लिए डाकिनी (डायन) रूप है॥3॥

*** अत्रि आदि मुनिबर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं॥ चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥4॥

भावार्थ:

अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहाँ निवास करते हैं जो योग, जप और तप करते हुए शरीर को कसते हैं। हे रामजी! चलिए, सबके परिश्रम को सफल कीजिए और पर्वत श्रेष्ठ चित्रकूट को भी गौरव दीजिए॥4॥

दोहा :

*** चित्रकूट महिमा अमित कही महामुनि गाइ। आइ नहाए सरित बर सिय समेत दोउ भाइ॥132॥

भावार्थ:

महामुनि वाल्मीकिजी ने चित्रकूट की अपरिमित महिमा बखान कर कही। तब सीताजी सहित दोनों भाइयों ने आकर श्रेष्ठ नदी मंदाकिनी में स्नान किया॥132॥